साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/22-23

Global School Of Excellence, Obedullaganj

Email- thekaarmiicpost@gmail.com

वर्ष : 12, अंक : 13 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 25 मार्च 2026 से 31 मार्च 2026 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

स्टेट ऑफ द ग्लोबल क्लाइमेट 2025- 11 साल में सबसे गर्म दशक, 2025 भी रिकॉर्ड के करीब

मुंबई विश्व मौसम विज्ञान संगठन (डब्ल्यूएमओ) की स्टेट ऑफ द ग्लोबल क्लाइमेट 2025 रिपोर्ट ने साफ संकेत दिया है कि वैश्विक जलवायु तेजी से संकट की ओर बढ़ रही है। रिपोर्ट के अनुसार, 2015 से 2025 तक के 11 वर्ष रिकॉर्ड में सबसे गर्म रहे हैं और 2025, 1850-1900 के औसत से लगभग 1.43 डिग्री सेल्सियस अधिक तापमान के साथ दूसरा या तीसरा सबसे गर्म वर्ष रहा। यह रिपोर्ट विश्व मौसम विज्ञान दिवस (23 मार्च) पर जारी की गई, जिसकी थीम थी आज का अवलोकन, कल की सुरक्षा । खास बात यह है कि पहली बार इसमें पृथ्वी के ऊर्जा असंतुलन को एक प्रमुख जलवायु संकेतक के रूप में शामिल किया गया है।

रिपोर्ट बताती है कि 2024 अब भी सबसे गर्म वर्ष बना हुआ है, जब तापमान लगभग 1.55 डिग्री सेल्सियस अधिक रहा था। 2025 में ला नीना स्थितियों के कारण थोड़ी अस्थायी ठंडक जरूर आई, लेकिन दीर्घकालिक गर्मी का रुझान जारी रहा। ग्रीनहाउस गैसों का स्तर लगातार बढ़ रहा है। 2024 में कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता पिछले 20 लाख वर्षों में सबसे अधिक दर्ज की गई, जबकि मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड का स्तर कम से कम 8 लाख वर्षों में सबसे ऊंचा रहा। कार्बन डाइऑक्साइड में वार्षिक वृद्धि भी 1957 के बाद सबसे ज्यादा रही, जिसका कारण जीवाश्म ईंधनों से उत्सर्जन और प्राकृतिक कार्बन सिंक की घटती क्षमता है। महासागर भी अभूतपूर्व रूप से गर्म हो रहे हैं। 2025 में 2000 मीटर गहराई तक महासागरों की ऊष्मा सामग्री रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गई। पिछले नौ वर्षों में हर साल नया रिकॉर्ड बना है। 2005 से 2025 के बीच महासागरों के गर्म होने की दर पहले के मुकाबले दोगुनी हो गई है। यह हर साल लगभग 11 से 12.2 ज़ेटाजूल ऊर्जा के बराबर है, जो मानव ऊर्जा उपयोग का लगभग 18 गुना है। वैश्विक जलवायु की स्थिति आपातकाल में है। पृथ्वी अपनी सीमाओं से परे धकेली जा रही है। हर प्रमुख जलवायु संकेतक खतरे का संकेत दे रहा है। मानवता ने अभी-अभी रिकॉर्ड के 11 सबसे गर्म वर्ष झेले हैं। जब इतिहास 11 बार खुद को दोहराता है, तो यह संयोग नहीं रहता, यह कार्रवाई का आह्वान बन जाता है। इसका असर समुद्री हीटवेव के रूप में भी दिखा, जहां 2025 में महासागर की लगभग 90 प्रतिशत सतह ने कम से कम एक बार अत्यधिक गर्मी का अनुभव किया। समुद्र स्तर भी लगातार बढ़ रहा है। 2025 में यह 1993 की तुलना में लगभग 11 सेंटीमीटर अधिक रहा और 2012 के बाद इसकी वृद्धि की गति और तेज हो गई है। इससे तटीय पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान, भूजल

में खारापन और बाढ़ का खतरा बढ़ रहा है। हिमनदों का पिघलना भी चिंताजनक स्तर पर है। 2024-25 में ग्लेशियर द्रव्यमान हानि रिकॉर्ड के पांच सबसे खराब वर्षों में शामिल रही। 2016 के बाद के आठ वर्ष इस सूची में हैं, जो तेजी से बढ़ती पिघलन को दर्शाता है। 2025 में आइसलैंड और उत्तरी अमेरिका के प्रशांत तट पर असाधारण पिघलाव देखा गया। रिपोर्ट के अनुसार, चरम मौसम घटनाएं—जैसे हीटवेव, भारी बारिश, सूखा और चक्रवात—अब अधिक तीव्र और बार-बार हो रही हैं। इनका असर केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं है, बल्कि खाद्य सुरक्षा, प्रवासन और सामाजिक स्थिरता पर भी पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है और खाद्य असुरक्षा एक बड़ा जोखिम बनकर उभर रही है। साथ ही, इन घटनाओं के कारण लोगों का विस्थापन भी बढ़ रहा है, खासकर उन क्षेत्रों में जो पहले से ही संघर्ष और अस्थिरता से जूझ रहे हैं। रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि महासागरों का लगातार गर्म होना, समुद्र स्तर में वृद्धि और बर्फ का पिघलना आने वाले समय में और गंभीर परिणाम ला सकता है। डब्ल्यूएमओ का यह आकलन साफ करता है कि जलवायु परिवर्तन अब भविष्य की नहीं, बल्कि वर्तमान की चुनौती है, जिसके प्रभाव दुनिया भर में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं।

पर्यावरण संतुलन के लिए अहम - मुर्मू ने राष्ट्रीय आरोग्य मेला का किया उद्घाटन, औषधीय पौधों को लेकर दिया संदेश

बुलढाणा द्रौपदी मुर्मू ने शेगांव में राष्ट्रीय आरोग्य मेला 2026 का उद्घाटन करते हुए कहा कि औषधीय पौधों की खेती किसानों की आमदनी बढ़ाने, मिट्टी की सेहत सुधारने और पर्यावरण संतुलन के लिए जरूरी है। उन्होंने जंगलों के खत्म होने और औषधीय पौधों की कमी पर चिंता जताई और कहा कि बीमारी से बचाव से स्वास्थ्य सेवा पर दबाव भी कम होता है। राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने औषधीय पौधों के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि औषधीय पौधों की खेती न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारती है बल्कि मिट्टी की सेहत और पर्यावरण संतुलन के लिए भी जरूरी है। राष्ट्रपति ने बताया कि अच्छे स्वास्थ्य को जीवन की असली खुशी माना जाता है और स्वस्थ नागरिक देश को मजबूत बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं। बता दें कि मुर्मू ने यह बात महाराष्ट्र के बुलढाणा के शेगांव में आयोजित राष्ट्रीय आरोग्य मेला 2026 का उद्घाटन करते हुए कही। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि बीमारी से बचाव व्यक्तिगत लाभ के साथ-साथ स्वास्थ्य सेवा प्रणाली पर दबाव भी कम करता है। मुर्मू ने कहा कि उनके जीवन का अनुभव और प्रकृति के करीब रहने का तरीका उन्हें आयुर्वेद और योग अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इस दौरान राष्ट्रपति ने चिंता जताई कि जंगलों के खत्म होने और औषधीय पौधों की कमी के कारण आज अनुसंधानकर्ता भी दवाइयों के लिए आवश्यक पौधों को जुटाने में मुश्किलों का सामना कर रहे हैं। मुर्मू ने कहा कि औषधीय पौधों की खेती को सरकार पर निर्भर न रहकर बढ़ावा देना चाहिए। उन्होंने बताया कि भारतीय परंपरा में %आरोग्यम् परमं सुखम्% कहा गया है, यानी समग्र स्वास्थ्य ही सबसे बड़ी खुशी है।

भारत में सूखे की बढ़ी प्रवृत्ति, गंगा के मैदानी भाग और पूर्वोत्तर सबसे अधिक प्रभावित

शिमला। दुनिया भर में बढ़ रही सूखे की प्रवृत्ति का सिलसिला अब भारत पर भी सख्ती से हावी हो रहा है। वास्तव में, गंगा के मैदानी भाग (आईजीपी) के कुछ हिस्से 2009 में ही व्यापक और तीव्र शुष्कता के पहले हॉटस्पॉट्स के रूप में पहचाने गए थे। दिसंबर 2025 में क्लाइमेट चेंज में प्रकाशित एक अध्ययन ने 1971 से 2020 तक भारत के छह बड़े क्षेत्रों में सूखे की प्रवृत्तियों और हाइड्रो-क्लाइमेटिक अस्थिरता का विश्लेषण किया।

इनमें पश्चिमी, केंद्रीय, हिमालयी, आईजीपी, प्रायद्वीपीय और उत्तर-पूर्वी भारत क्षेत्र शामिल थे। अध्ययन में स्टैंराइज्ड लोकल एनॉमेलीज (एसएलए), नोवेल क्लाइमेट स्कोर्स (एनसीएस), स्थानीय जलवायु चरम स्थितियों की संभावनाओं में बदलाव और स्टैंडराइज्ड प्रेसिपिटेशन इवैपोट्रांसपिरेशन इंडेक्स (एसपीईआई) जैसे जलवायु मानकों का उपयोग करके यह देखा गया कि सूखा तीव्र होता जा रहा है और नए जलवायु रूप बन रहे हैं। एसपीईआई विश्लेषण से पता चलता है कि आईजीपी, हिमालय और उत्तर-पूर्वी भारत में सूखे की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। यह पैटर्न कमजोर मानसून वर्षा और बढ़ते तापमान का परिणाम है। मानसून के महीनों में वर्षा की कमी सूखे की मुख्य वजह है, जबकि मानसून से पहले और बाद के मौसम में ऊंचे तापमान के कारण जलवाष्पन बढ़ना इसका प्रमुख कारण बनता है।नेशनल सेंटर फॉर मीडियम रेंज वेदर फोरकास्टिंग के अंतर्गत काम करने वाले बिम्सटेक सेंटर फॉर वेदर एंड क्लाइमेट के प्रोजेक्ट साइंटिस्ट अर्पित तिवारी कहते हैं, आईजीपी और उत्तर-पूर्वी भारत में एसपीईआई रुझान क्रमशः -0.47 और -0.41 हैं, जो तेजी से बढ़ती शुष्कता को दर्शाते हैं। हिमालय (-0.21) और मध्य भारत (-0.07) में यह रुझान अपेक्षाकृत कम हैं। आईजीपी और उत्तर-पूर्वी भारत में दिन और रात के तापमान में लगातार वृद्धि और वर्षा में कमी गंभीर नमी की कमी पैदा कर रही है। भूजल का अत्यधिक दोहन और गहन जल से होने वाली कृषि के चलते उच्च जलवाष्पन दरअसल इस समस्या को और ज्यादा गंभीर बना रही है। उत्तर-पूर्व में कमजोर होती मानसूनी परिसंचरण और बढ़ते तापमान ने उस क्षेत्र की वर्षा संपन्नता को भी कमजोर कर दिया है, जो पहले वर्षा प्रधान था। तिवारी कहते हैं, यह सभी क्षेत्रों में अलग-अलग तरीके से होने वाले तापमान बढ़ोतरी, वर्षा में कमी और भूमि पर दबाव के आपसी प्रभावों से नियंत्रित होता है। सिंतबर, 2025 में पीएनएएस अर्थ, एटमॉस्फेरिक एंड प्लेनटरी साइंसेज में प्रकाशित एक अध्ययन के मुताबिक गंगा नदी बेसिन ने 1991 से 2020 तक तीन दशक में पिछले 1300 वर्षों में सबसे ज्यादा सूखा का अनुभव किया है। शोधकर्ताओं ने ट्री-रिंग डेटा से पुनर्निर्मित नदी प्रवाह का विश्लेषण करने पर पाया कि गंगा का सूखापन 16वीं सदी के सूखों की तुलना में 76 प्रतिशत अधिक तीव्र था। सूखे का यह पैमाना प्राकृतिक बदलाव से भी परे है, जो स्पष्ट रूप से मानव प्रभाव की ओर इशारा करता है। यूनिवर्सिटी ऑफ एरिजोना के डिपार्टमेंट ऑफ जियोसाइंसेज में एसोसिएट प्रोफेसर और इस अध्ययन के सह लेखक कौस्तुभ थिरुमलई ने डाउन टू अर्थ को बताया कि ट्री-रिंग जैसे प्राचीन जलवायु रिकॉर्ड यह समझने में मदद कर सकते हैं कि आईजीपी क्षेत्र और भारत की अन्य नदी घाटियों का भविष्य कैसा दिख सकता है उभरता हुआ वाटर बैंकरप्सी यानी पानी का दिवालियापन केवल जल विज्ञान की समस्या नहीं है, बल्कि यह एक राजनीति और अर्थव्यवस्था से जुड़ा संकट भी है। जल संकट ना केवल एक राष्ट्र के भीतर बल्कि सीमा पार समझौतों में भी विवाद का कारण बन सकता है। 20 जनवरी को जारी की गई यूनाइटेड नेशंस् यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट फॉर वाटर, एनवायरमेंट एंड हेल्थ की ग्लोबल वाटर बैंकरप्सी रिपोर्ट के मुताबिक, पानी राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों के साथ एक रणनीतिक अवसर भी हो सकता है। रिपोर्ट के अनुसार, बेहतर जल प्रबंधन ना सिर्फ देशों के भीतर और उनके बीच एकता पैदा कर सकता है बल्कि यह जैव विविधता संरक्षण, जलवायु परिवर्तन से लड़ाई और मरुस्थलीकरण को रोकने के प्रयासों में भी योगदान दे सकता है। रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि जल संकट और बैंकरप्सी की समस्याएं तब तक बनी रहेंगी जब तक मानव या अन्य जीव इस पृथ्वी पर हैं। संसाधन प्रबंधन की समस्याओं में विनिमय और अनिश्चितता स्वाभाविक है। राष्ट्र और समुदाय जल प्रबंधन में कुछ गलतियां कर सकते हैं लेकिन यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि वह अपरिवर्तनीय ना हों। आज यदि कोई प्रणाली स्थिर दिखे तो इसका मतलब यह नहीं कि भविष्य में वह चुनौतीपूर्ण नहीं होगी। ग्लोबल वाटर बैंकरप्सी रिपोर्ट के लेखक कावेह मदानी कहते हैं प्रौद्योगिकी मदद कर सकती है और इसे समाधान का हिस्सा होना चाहिए। सिंचाई दक्षता में सुधार से कृषि प्रथाओं में सुधार देखा गया है। नमक हटाने वाले प्लांट, पानी को साफ करके दोबारा इस्तेमाल करना और दोबार उपयोग भी मदद कर सकते हैं। पंप, जल हस्तांतरण और बांधों से भी राहत मिल सकती है।

फिर भी, हर उपाय के साथ लागत और जोखिम जुड़े हैं। यदि सरकारें अनपेक्षित परिणामों को रोकने की योजना नहीं बनातीं तो बेहतर सिंचाई अक्सर किसानों को अधिक भूमि पर फसलें लगाने या पानी अधिक मांगने वाली फसलों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करती है, जिससे भूजल बचत कमजोर हो जाती है। डीसैलिनेशन प्लांट से उत्पन्न होने वाला खारा पानी समुद्री पारिस्थितिकी के लिए खतरा बन सकता है और जलाशय नदियों की प्राकृतिक प्रणाली को बाधित कर सकते हैं।साथ ही, विज्ञान की वर्तमान क्षमताओं में भी सीमाएं हैं। कपल्ड मॉडल इंटरकंपैरिजन प्रोजेक्ट (सीएमआईपी) जैसे जलवायु मॉडल उच्च अक्षांश वाले क्षेत्रों में सतही मीठे पानी में कमी को ठीक से नहीं दर्शा पाते क्योंकि वहां बहुत भिन्नता होती है। चंदनपुरकर बताते हैं, मैंने भारत में केवल पांच मीटर की दूरी पर दो अलग कुएं देखे हैं। एक पूरी तरह भरा हुआ है और दूसरा लगभग सूखा, क्योंकि उनकी जलस्रोत (एक्विफर) की विशेषताएं अलग हैं। यहां असमानता अत्यधिक है। कुछ लोग यह समझते हैं कि सेटेलाइट और उच्च प्रदर्शन वाले मॉडल्स के आने के बाद ऑबजर्वेशन्स का महत्व कम हो गया है। लेकिन चंदनपुरकर कहते हैं, हम डाटा के स्वर्ण युग में जी रहे हैं लेकिन वह डाटा जमीनी अवलोकन नहीं है। हमें लगातार और विश्वसनीय जमीनी ऑब्जर्वेशन्स की बेहद जरूरत है। बहुत कम कुएं ऐसे बनाए जाते हैं जिन्हें सैटेलाइट के मार्ग को ध्यान में रखते हुए मॉनिटरिंग वेल कहा जा सके। जहां ऑब्जर्वेशन हो रहे हैं, वहां भी अधिकतर स्वचालित प्रणाली नहीं है। अक्सर साल में केवल एक बार मैनुअल रीडिंग ली जाती है, जबकि हाइड्रोजियोलॉजी में साल भर बदलाव होते रहते हैं। ऐसे एकल डाटा पॉइंट से ज्यादा कुछ नहीं किया जा सकता। डाटा को उन स्थानों से आना चाहिए जहां पहले बहुत कम जानकारी है। साथ ही डाटा को साझा करना भी आवश्यक है लेकिन भारत जैसे देशों में यह चुनौतीपूर्ण है। डाटा की कमी मॉडल के कैलिब्रेशन और वैलिडेशन में बाधा डालती है। बिना अच्छे डाटा के मॉडल अंधे होते हैं। मॉडल की भविष्यवाणियों को सुधारने का सबसे प्रभावी तरीका है वैज्ञानिक समुदाय के साथ अधिक डाटा प्रदान करना और साझा करना।

मौसम की मार और इथेनॉल की घटती मांग से बिहार के मक्का किसानों की मुश्किलें बढ़ीं

सुपौल 12 बीघा में लगा हुआ मकई आधे से ज्यादा बर्बाद हो गया है। खाद, पटवन, बीज, बुआई और दवाई मिलाकर लगभग एक बीघा में 12,000 रुपए खर्च हुआ है। हम जैसे बटाईदार किसान के लिए यह मौत से कम नहीं है। यह कहना है, बिहार के सहरसा जिला के कोसी दियारा स्थित सलखुआ प्रखंड के कोटुम्बर के वार्ड नंबर 6 के रहने वाले सोती लाल का।

वहीं सीमांचल स्थित पूर्णिया जिला के कोढा शीशिया के रहने वाले भोला कुमार बताते हैं, तेज आंधी, तूफान, ओलावृष्टि और बारिश से खेत में लगी गेहूं और मक्के की फसलें पूरी तरह बर्बाद हो गई। कुछ ही महीनों में फसल तैयार होनी थी लेकिन पहले ही टूट कर गिर गई है। दरअसल 20 मार्च 2026 को बिहार में मौसम के बदले मिजाज ने भारी तबाही मचाई है। मक्का का हब कहा जाने सीमांचल और कोसी इलाका में तेज आंधी और मूसलाधार बारिश के कारण राज्य में रबी फसल खास कर मक्के की फसल को काफी नुकसान हुआ है, जिससे किसानों को भारी आर्थिक क्षति हुई है। बिहार भारत के मुख्य मक्का उत्पादक राज्यों में से एक है। बिहार के सहरसा जिला स्थित महिषी के रहने वाले बब्बू ठाकुर बताते हैं, अभी बिहार में मक्का 1500 से 1600 रुपए क्विंटल मिल रहा है। 2 साल पहले 2500 रुपए क्विंटल खरीदा गया था। पिछले साल भी बढ़िया रेट था। मार्केट में इस वजह से किसान अनाज बेच नहीं रहा है। अब देखिए मार्केट जाने से पहले ही खेत में पूरा फसल बर्बाद हो गया। आखिर अब सरकार से मांग नहीं करेंगे तो किससे करेंगे? वहीं पूर्णिया जिला स्थित बनमनखी प्रखंड के रहने वाले जैबांर मियां बताते हैं, तूफान-आंधी से खेत में लगी फसल पूरी तरह बर्बाद होने से सबसे ज्यादा दुखी मक्का की किसान है। इसमें काफी रुपया लगता है। मेरा लगभग 50 प्रतिशत खेत बर्बाद हो चुका है। भविष्य में थोड़ा भी मौसम खराब हुआ तो पूरा बर्बाद हो जाएगा। सरकार अगर मदद नहीं करेगी तो हमारे जैसा छोटा किसान इतना महंगा फसल नहीं लग पाएगा। पहले ही इथेनॉल कंपनी की स्थिति खराब होने के कारण 2200-2400 रुपये प्रति क्विंटल बिकने वाली मक्का 1200-1600 रुपये पर सिमट गई है। मक्का किसानों के मुताबिक पिछले कुछ सालों में मक्का से इथेनॉल उत्पादन ने बिहार के किसानों को भारी आर्थिक नुकसान से बचाने में बड़ी भूमिका निभाई है। जिस फसल को बेचने में मुश्किल हो रही थी, उसे अब नई कीमत और नया बाजार मिला है। कृषि विभाग के रिपोर्ट के मुताबिक मक्का 14.91 लाख मीट्रिक टन से बढ़कर 58.65 लाख मीट्रिक टन हो चुका है। भाजपा के विधायक और पूर्व मंत्री नीरज सिंह बबलू ने यह मुद्दा विधानसभा में उठाया। उन्होंने कहा,इथेनॉल से जुड़ी नीतिगत परिस्थितियों और पर्याप्त सरकारी खरीद न होने के कारण मक्का का भाव 2600 रुपए प्रति क्विंटल से गिरकर लगभग 1600 रुपए प्रति क्विंटल रह गया है। इससे किसानों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ रहा है। अनेक छोटे-मध्यम उद्योग बंद होने की कगार पर हैं और रोजगार संकट गहराता जा रहा है। वहीं राज्य के उद्योग मंत्री दिलीप जायसवाल ने इस मुद्दे पर कहा,राज्य में 11 समर्पित इथेनॉल प्लांट कार्यरत हैं, जो केंद्र सरकार से समझौते के तहत संचालित होते हैं। पहले पेट्रोलियम कंपनियां इनसे प्रतिवर्ष 46 करोड़ लीटर इथेनॉल खरीदती थीं। इस वर्ष 11 करोड़ लीटर की खरीदारी में कमी आई है, लेकिन अब यह प्रक्रिया पुन: चालू हो जाएगी। वहीं, 8 अन्य इथेनॉल प्लांट ऐसे हैं, जिनका केंद्र सरकार से कोई समझौता नहीं है। ऐसे प्लांटों की खरीद-बिक्री की जिम्मेदारी केंद्र सरकार की नहीं होगी।

लाल बौने तारे जीजे 887 तारा प्रणाली में चार नए ग्रहों की हुई खोज

न्यूयार्क। वैज्ञानिकों ने हाल ही में एक महत्वपूर्ण खोज की है। एक नए अध्ययन में बताया गया है कि जीजे 887 नाम के एक पास के लाल बौने तारे के चारों ओर अब कुल चार ग्रहों की पुष्टि हो चुकी है। इस खोज को जर्नल एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स में प्रकाशित किया गया है। खास बात यह है कि इनमें से एक ग्रह उस क्षेत्र में है जहां जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियां हो सकती हैं।

जीजे 887 एक लाल बौना तारा है जो हमारी पृथ्वी से लगभग 10.7 प्रकाश वर्ष दूर स्थित है। अंतरिक्ष की दृष्टि से यह दूरी बहुत ज्यादा नहीं मानी जाती, इसलिए यह तारा वैज्ञानिकों के लिए अध्ययन का एक अच्छा लक्ष्य है। अध्ययन के अनुसार इन ग्रहों की कक्षीय अवधि लगभग 4.4, 9.2, 21.8 और 50.8 दिन है, जो तारे के काफी करीब हैं। लाल बौने तारे छोटे और अपेक्षाकृत ठंडे होते हैं। ऐसे तारों के आसपास छोटे ग्रहों को ढूंढना आसान होता है। इसके अलावा इन तारों के पास का क्षेत्र, जिसे हैबिटेबल जोन कहा जाता है, पृथ्वी के मुकाबले तारे के ज्यादा करीब होता है। साल 2020 में वैज्ञानिकों ने इस तारे के चारों ओर दो ग्रहों की खोज की थी। इन ग्रहों की कक्षीय अवधि लगभग 9 दिन और 21 दिन थी। उस समय वैज्ञानिकों को एक तीसरे संभावित ग्रह का संकेत भी मिला था जिसकी अवधि लगभग 50 दिन थी। नए शोध में वैज्ञानिकों ने अधिक सटीक और नए डेटा का उपयोग किया। उन्होंने हाई एक्यूरेसी रेडियल वेलोसिटी प्लेनेट सेअर्चेर (एचएआरपीएस) और एस्प्रेसो स्पेक्ट्रोग्राफ से हासिल मापों को जोड़ा। इसके अलावा उन्होंने अंतरिक्ष दूरबीन ट्रांजिटिंग एक्सोप्लैनेट सर्वे सैटेलाइट (टीईएसएस) के फोटोमेट्रिक आंकड़ों का भी अध्ययन किया। इस खोज का सबसे रोमांचक हिस्सा यह है कि जीजे 887 डी तारे के हैबिटेबल जोन में स्थित है। हैबिटेबल जोन वह क्षेत्र होता है जहां तापमान ऐसा हो सकता है कि ग्रह की सतह पर तरल पानी मौजूद रह सके। तरल पानी को जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। इसलिए ऐसे ग्रहों को जीवन की खोज के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह ग्रह पृथ्वी से लगभग छह गुना अधिक द्रव्यमान वाला हो सकता है। इसलिए इसे सुपर-अर्थ श्रेणी का ग्रह कहा जाता है। हमारे सबसे पास के हैबिटेबल ग्रहों में यह दूसरा सबसे नजदीकी ग्रह है। पहला ग्रह प्रॉक्सिमा सेंटॉरी बी है। हालांकि वैज्ञानिकों को इस ग्रह का द्रव्यमान पता है, लेकिन उसका आकार अभी नहीं पता चल पाया है। जब तक ग्रह का आकार नहीं पता होगा, तब तक उसकी घनता और संरचना के बारे में पूरी जानकारी नहीं मिल सकती।

प्लास्टिक संकट का देसी समाधान- भारतीय वैज्ञानिकों ने बनाया 'ग्रीन बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक'

नई दिल्ली। वैज्ञानिकों ने यह बायोपॉलिमर 'पॉलीहाइड्रॉक्सीब्यूटिरेट (पीएचबी)' एक बैक्टीरिया 'बैसिलस सबटिलिस एफडब्ल्यू1' से तैयार किया है, जिसे नागालैंड के मोकोकचुंग जिले में मछली के कचरे वाली जगहों से खोजा गया था माइक्रोप्लास्टिक के तेजी से बढ़ते वैश्विक संकट के बीच नागालैंड यूनिवर्सिटी के नेतृत्व में भारतीय वैज्ञानिकों ने एक बड़ा समाधान पेश किया है।

शोधकर्ताओं ने मछली के कचरे वाली जगहों से मिले बैक्टीरिया 'बैसिलस सबटिलिस एफडब्ल्यू1' की मदद से 'पॉलीहाइड्रॉक्सीब्यूटिरेट (पीएचबी)' नाम का बायोडिग्रेडेबल बायोपॉलिमर तैयार किया है, जो पारंपरिक प्लास्टिक का पर्यावरण-अनुकूल विकल्प बन सकता है। यह बायोपॉलिमर पूरी तरह प्राकृतिक स्रोतों से बना है, शरीर के लिए सुरक्षित (बायोकम्पैटिबल) पाया गया है और उच्च तापमान सहने में सक्षम है। अध्ययन के मुताबिक, यह बैक्टीरिया करीब 69.2 फीसदी तक पीएचबी उत्पादन कर सकता है, जबकि मिट्टी में दबाने पर यह सामग्री 28 दिनों में लगभग 60 फीसदी तक गल जाती है, जो इसकी मजबूत पर्यावरणीय क्षमता को दर्शाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस तकनीक को बड़े पैमाने पर अपनाने से प्लास्टिक कचरा और माइक्रोप्लास्टिक बनने की समस्या कम हो सकती है, साथ ही कार्बन उत्सर्जन घटाने और सर्कुलर बायोइकोनॉमी को बढ़ावा देने में मदद मिल सकती है।

दुनिया भर में माइक्रोप्लास्टिक के बढ़ते प्रदूषण के बीच एक बड़ी राहत की खबर सामने आई है। नागालैंड यूनिवर्सिटी के नेतृत्व में देश के कई संस्थानों के वैज्ञानिकों ने मिलकर ऐसा बायोडिग्रेडेबल बायोपॉलिमर तैयार किया है, जो पारंपरिक प्लास्टिक का पर्यावरण-अनुकूल विकल्प बन सकता है। बता दें कि प्लास्टिक के बेहद महीन कणों को माइक्रोप्लास्टिक के नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही कपड़ों और अन्य वस्तुओं के माइक्रोफाइबर के टूटने से भी माइक्रोप्लास्टिक्स बनते हैं। आम तौर पर प्लास्टिक के एक माइक्रोमीटर से पांच मिलीमीटर के टुकड़े को 'माइक्रोप्लास्टिक' कहा जाता है। आज हालात ऐसे हैं कि ये सूक्ष्म कण हवा, पानी और मिट्टी के साथ आज धरती के करीब-करीब हर हिस्से में फैल चुके हैं। चिंता की बात यह है कि वैज्ञानिकों को इनकी मौजूदगी के सबूत इंसानों और दूसरे जीवों के शरीर में भी मिले है। देखा जाए तो यह कण मछलियों से लेकर इंसानों तक, पूरी खाद्य श्रृंखला में जमा होते जाते हैं। इस प्रक्रिया को बायोमैग्नीफिकेशन कहा जाता है, जिसमें हर स्तर पर इनकी मात्रा बढ़ती जाती है और अंततः इंसानों के स्वास्थ्य पर गंभीर असर डालती है। इसी समस्या को देखते हुए भारतीय वैज्ञानिकों ने एक खास तरह का बायोपॉलिमर 'पॉलीहाइड्रॉक्सीब्यूटिरेट (पीएचबी)' तैयार किया है। यह प्लास्टिक की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है, लेकिन फर्क यह है कि यह प्राकृतिक रूप से टूटकर खत्म हो जाता है। यह पदार्थ एक बैक्टीरिया 'बैसिलस सबटिलिस एफडब्ल्यू1' से तैयार किया गया है, जिसे नागालैंड के मोकोकचुंग जिले में मछली के कचरे वाली जगहों से खोजा गया था। यानी, कचरे से ही समाधान निकालने की दिशा में यह एक बड़ा कदम है। शोधकर्ताओं द्वारा साझा जानकरी के मुताबिक यह बायोपॉलिमर पूरी तरह बायोडिग्रेडेबल है। इसके साथ ही शरीर के लिए सुरक्षित (बायोकम्पैटिबल) पाया गया।इसकी एक और विशेषता यह है कि यह उच्च तापमान भी सह सकता है। मतलब कि एक तरफ जहां यह प्लास्टिक की तरह उपयोगी है, वहीं दूसरी तरफ पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित है, क्योंकि यह प्राकृतिक स्रोतों से बना है। इस अध्ययन में कई अहम और उम्मीद जगाने वाले नतीजे सामने आए। शोध में पाया गया कि यह बैक्टीरिया करीब 69.2 प्रतिशत तक पीएचबी बायोपॉलिएस्टर बना सकता है, जो इसकी मजबूत उत्पादन क्षमता को दिखाता है। जांच में यह भी सामने आया कि यह बायोपॉलिमर उच्च तापमान को सहने में सक्षम है। सबसे महत्वपूर्ण बात, लैब परीक्षणों में यह पदार्थ मानव लिवर की कोशिकाओं (एचईपीजी2) के साथ सुरक्षित और अनुकूल पाया गया, जिससे संकेत मिलता है कि इसका उपयोग मेडिकल क्षेत्र में भी किया जा सकता है। साथ ही, मिट्टी में दबाने पर यह बायोपॉलिमर 28 दिनों में लगभग 60 फीसदी तक गल गया, जो इसे एक पर्यावरण-अनुकूल विकल्प साबित करता है। इस शोध में देश के कई बड़े संस्थानों से जुड़े शोधकर्ताओं ने भाग लिया, जिनमें सीएसआईआर-नार्थ ईस्ट इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, सत्यभामा विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, तेजपुर विश्वविद्यालय, भारतियार विश्वविद्यालय, कोयंबटूर और गलगोटिया विश्वविद्यालय से जुड़े शोधकर्ता शामिल हैं। अध्ययन के नतीजे प्रतिष्ठित जर्नल ऑफ पॉलीमर रिसर्च में प्रकाशित हुए हैं। नागालैंड यूनिवर्सिटी और अध्ययन से जुड़े शोधकर्ता प्रांजल भराली ने प्रेस विज्ञप्ति में जानकारी देते हुए कहा कि माइक्रोबियल बायोटेक्नोलॉजी में हो रही ऐसी प्रगति वैश्विक प्लास्टिक प्रदूषण से निपटने में अहम भूमिका निभा सकती है। इससे ऐसे पदार्थ तैयार किए जा सकते हैं, जो उद्योग और पर्यावरण दोनों के लिए फायदेमंद हों। उन्होंने बताया कि, बैक्टीरिया से बने बायोपॉलिमर पेट्रोलियम आधारित प्लास्टिक पर निर्भरता कम कर सकते हैं और सर्कुलर बायोइकोनॉमी को बढ़ावा दे सकते हैं। अगर इन बायोडिग्रेडेबल पदार्थों का बड़े स्तर पर इस्तेमाल शुरू होता है, तो इससे प्रदूषण और माइक्रोप्लास्टिक की समस्या कम होगी, कार्बन उत्सर्जन घटेगा और मेडिकल, कृषि व पर्यावरण अनुकूल पैकेजिंग जैसे क्षेत्रों में नए अवसर खुलेंगे। हालांकि यह खोज नई उम्मीद जगाती है, लेकिन इसे बड़े पैमाने पर अपनाने के लिए अभी कई अहम कदम उठाने बाकी हैं। सबसे पहले, इसके उत्पादन को सस्ता और बड़े स्तर पर संभव बनाना होगा। साथ ही, अलग-अलग पर्यावरणीय परिस्थितियों में इसके प्रभाव और व्यवहार को समझना भी जरूरी है। इसके अलावा, लोगों के बीच ऐसे टिकाऊ विकल्पों को लेकर जागरूकता बढ़ाना भी उतना ही महत्वपूर्ण होगा, ताकि इसका इस्तेमाल व्यापक स्तर पर हो सके। नागालैंड विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं की अगुवाई में हुई यह खोज साबित करती है कि स्थानीय संसाधनों और वैज्ञानिक सोच के संगम से वैश्विक समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। ऐसे में अगर इस तकनीक को बड़े स्तर पर अपनाया गया, तो यह प्लास्टिक प्रदूषण के खिलाफ एक बड़ा हथियार साबित हो सकती है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008